ISSN 2319-5339 (P), 2583-7591 (O) IIS Univ.J.A. Vol.12 (1&2), 385-395 (2023)

आंचलिक उपन्यासः प्रमुख तत्त्वों एवं विशेषताओं का विश्लेषण

राजेन्द्र कुमार सेन

सारांश

साहित्य में आंचलिक जीवन का चित्रण एक विशिष्ट प्रवृति के रूप में प्रचलित है। यद्यपि साहित्य में आंचलिक तत्वों का पुट आदिकाल से देखा जा सकता है परंतु रचना में आंचलिक संस्कृति की समग्रता की दृष्टि से आधुनिक काल की यह एक प्रमुख प्रवृति के रूप में इसका विकास एवं विस्तार देखा जा सकता है।स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा साहित्य और विशेषकर उपन्यास लेखन में आंचलिकता नाम की एक नवीन प्रवृत्ति का प्रचलन देखने को मिला। वैसे तो जिन तत्त्वों के आधार पर किसी रचना को आंच. लिकता का जामा पहनाया गया, उनका वर्णन साहित्य में पहले से ही विद्यमान था, किन्तु इसे स्वतन्त्र प्रवत्ति के रूप में सामने लाने वाले फणीश्वरनाथ 'रेणू' ही थे, जिन्होंने 'मैला आंचल' की भूमिका में इसे आंचलिक उपन्यास बताया और परिणाम स्वरूप हिन्दी कथा साहित्य में आंचलिक लेखन आरंभ हुआ। प्रस्तुत शोधपत्र में आंचलिक उपन्यास के विविध तत्वों एवं वैशिष्ट प्रदान करने वाले पक्षों पर आलोचनात्मक दृष्टिपात करते हुए महत्वपूर्ण बिंदुओं को उजागर किया गया है।

बीजशब्द: अंचल, आंचलिकता, साहित्य, संस्कृति, जीवन शैली, संस्कार आदि

'अंचल' का लाक्षणिक अर्थ है कोई ग्राम, प्रांत या विशेष भू–खण्ड जिसको किसी उपन्यास की घटनाओं का केन्द्रस्थल मान लिया जाता है। अंचल में 'इक' तद्धित प्रत्यय लगाकर आंचलिक विशेषण शब्द बनता है। आंचलिक का शाब्दिक अर्थ है–अंचल संबंधी अर्थात् अंचल से संबंधित वस्तु–विशेष। इसी प्रकार आंचलिकता भाववाचक संज्ञा है जिसका अर्थ है–''किसी रचना में कथावस्तु आदि का देश के किसी अंचल से संबद्ध होना।'' अत: कहा जा सकता है कि कोई भी विशेष भू–भाग जिसकी अपनी संस्कृति हो, अपनी भाषा हो, अपनी समस्याएँ हो अर्थात् अपनी विशिष्टता को व्यक्त करे उसे 'अचल' कहा जाता है और उससे जुड़ी वस्तु विशेष आंचलिक कहलाती है और उसके भावमूलक अर्थ को आंचलिकता के रूप में स्पष्ट किया जाता है। ''आंचलिकता का अर्थ है क्षेत्र विशेष के सत्य का उद्घाटन करता हुआ जीवन जो किसी एक परिवेश विशेष नहीं वरन् उस खंड के समग्र क्षेत्रीयता का प्रतीक है। अंचल के भौगोलिक या सामाजिक या सांस्कृतिक सीमाबद्ध खास क्षेत्र के सामान्य जीवन सत्यों का अन्तर या एक रूपता का दर्शन, देशकाल, जाति, धर्म, भौगोलिक स्थिति, आर्थिक सामाजिक प्रणाली, रीति–नीति के मनोवैज्ञानिक रहस्यों के बीच स्थापित क्षेत्रीय जीवन की स्वीकृति आंचलिकता की पुष्टि करती है। अंचल विशेष की एक विशिष्ट भौगोलिक संस्कृति की, जिसकी जड़ें उसके जनमानस में गहरी जमीं होती हैं, खोज का नाम आंचलिकता है।''''' हिन्दी कथा–साहित्य में आंचलिकता का सूत्रपात अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव से 20वीं शताब्दी के पूर्वाद्ध में माना जाता है। सन् 1800 में मेरिया एजवर्थ का उपन्यास 'केसिल रेकरेण्ट' स्थानीय रूप सज्जा को लेकर प्रकाशित

*डा. शिवप्रसाद भारद्वाज शास्त्री, मानक विशाल हिन्दी शब्द कोष, पृष्ठ 189

** वही, पृष्ठ 66

*** डा. कुमारी नगीना जैन, आंचलिकता और हिन्दी उपन्यास, अक्षर प्रकाशन, 1976, पृष्ठ 5

हुआ जिसे 'रीज़नल नावेल' के स्थायी नाम से अभिहित किया गया। उसके पश्चात् 'थामस हार्डी' ने आंचलिक उपन्यास लिखकर धूम मचा दी। उन्होंने वैसकस नामक भू-भाग के जन-जीवन का अपने उपन्यासों में चित्रण किया था। इससे प्रभावित होकर भारतीय साहित्यिकारों ने भी अपना ध्यान केन्द्रित कर किसी अंचल विशेष की सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक आवश्यकताओं/विशेषताओं पर आधारित रचनाएँ प्रकाशित करने का प्रयत्न आरंभ कर दिया। हिन्दी कथा-साहित्य में आंचलिकता का व्यवस्थित रूप सन् 1950 ई. के पश्चात् ही रचनाओं में परिलक्षित होता है। महेन्द्र चतुर्वेदी आंचलिकता के प्रादुर्भाव को अधिक पुराना नहीं मानते उनका स्पष्ट कथन है कि आंचलिकता हिन्दी उपन्यास की एक नव्यतम प्रवृत्ति है, जिसकी उद्भावना और प्रतिष्ठा प्राय: गत दशक में ही हुई है।[****] सन् 1940 के आस-पास हिन्दी जगत् में जनपदीय आन्दोलनों का सूत्रपात हुआ जिसका नेतृत्व राहुल सांकृत्यायन, शिवराज सिंह चौहान एवं बनारसी दास चतुर्वेदी ने किया था। इन विद्वानों ने हिन्दी लेखकों को जनपदीय संस्कृति एवं वहाँ की स्थानीय बोलियों के अध्ययन की प्रेरणा दी। देश का रचना धर्मी यहाँ पहली बार ग्रामांचलों की दैन्य, गरीबी व शोषण से पीड़ित मानवता को अपने साहित्य के माध्यम से वाणी एवं वानगी देने के लिए आगे बढ़ा।[*****]

अंचल को आंचलिकता प्रदान करने वाले कुछ विशेष तत्त्व होते हैं और इन्हीं तत्त्वों को जब उपन्यास में प्रमुख स्थान प्रदान किया जाता है तो वह उपन्यास आंचलिक उपन्यास कहलाने लगते हैं अर्थात् औपन्यासिक तत्त्वों में कुछ विशिष्टता का समावेश ही इन्हें आंचलिकता का नया आवरण प्रदान करता है। डा. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय ने आंचलिक उपन्यास की परिभाषा में कहा है-''आंचलिक उपन्यास उन उपन्यासों को कहते हैं जिनमें किसी विशेष जनपद अंचल (क्षेत्र) के जन-जीवन का समग्र चित्रण होता है। समग्र का अर्थ है- भाषा, वेशभूषा, उत्पादन के साधन, प्रकार विनिमय। संक्षेप में आर्थिक जीवन, उस आर्थिक जीवन पर आधारित वर्गों और जातियों के परस्पर संबंध, साहित्य, संस्कृति-धार्मिक विश्वास, विवाह, मृत्यु आदि आचार, शिष्टाचार, चरित्र और आदतें, मनोरंजन, व्यसन, कला, भोजन, पान, स्वास्थ्य, शिक्षा-दीक्षा तथा जीवन-दर्शन। सामाजिक समस्याएँ, राजनीतिक जीवन एक अंचल का दूसरे अंचल से संबंध अंचल की विशिष्ट और सामान्य परंपरा और प्रगति- इन सब विषयों का जब किसी उपन्यास में चित्रण होता है और जब इस उपन्यास को पढ़कर हमारे सम्मुख उस अंचल का समग्र जीवन अवतरित हो जाता है तब हम उस उपन्यास को आंचलिक उपन्यास कहते हैं।''[******] इस परिभाषा का अवलोकन करने के पश्चात् डा. ह.क. कड़्वे ने आंचलिकता को इस प्रकार स्पष्ट किया है-''विशेष जनपदीय अंचल, जनजीवन और उसका समग्र चित्रण। समग्र चित्रण में आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक समस्याओं, अंचल की परंपराओं, अन्य अंचल से संबंध, वेशभूषा, आदि का स्वरूप अभिव्यक्त होता है।''[*******]

हिन्दी साहित्य में आंचलिकता की प्रवृत्ति का श्रीगणेश फणीश्वरनाथ 'रेणु' के 'मैला आंचल' उपन्यास से होता है। भले ही 'रेणु' से पूर्व नागार्जुन का 'बलचनमा' उपन्यास प्रकाशित हो चुका था, किन्तु उसे सामाजिक यथार्थवादी श्रेणी में नही विचारा गया। रेणु ही वे पहले साहित्यकार थे जिन्होंने साहित्य जगत् को इस नवीन प्रवृत्ति से साक्षात् कराया। रेणु ने अपने उपन्यास 'मैला आंचल' की भूमिका में लिखा-''यह है मैला आंचल, एक आंचलिक उपन्यास। कथानक है पूर्णिया। पूर्णिया बिहार राज्य का एक जिला है; इसके एक ओर नेपाल, दूसरी ओर पाकिस्तान और पश्चिम बंगाल। विभिन्न सीमा-. रेखाओं से इसकी बनावट मुकम्मल हो जाती है, जब हम दक्खिन में सन्थाल परगना और पच्छिम

**** महेन्द्र चतुर्वेदी, हिन्दी उपन्यास एक सर्वक्षण, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1962, पृष्ठ 189

***** डा. वंशीधर, हिन्दी के आंचलिक उपन्यास : सिद्धांत और समीक्षा, भाषा प्रकाशन, 1983, पृष्ठ 63

****** श्री विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, पिछले दशक की देन : साहित्य संदेश, (जनवरी-फरवरी 1958) पृष्ठ 361

******* डॉ. ह. क. कड़्वे, हिन्दी उपन्यासों में आंचलिकता की प्रवृत्ति, अन्नापूर्णा प्रकाशन, कानपुर 1978ए पृष्ठ 22

में मिथिला की सीमा रेखाएँ खींच देते है। मैंने इसके एक हिस्से के एक ही गांव को – पिछड़े गांवों का प्रतीक मानकर – इस उपन्यास कथा का क्षेत्र बनाया है। इसमें फूल भी हैं शूल भी हैं, धूल भी हैं, गुलाब भी हैं, कीचड़ भी हैं, चंदन भी, सुंदरता भी है, कुरूपता भी – मैं किसी से दामन बचाकर निकल नहीं पाया।''''''''' फणी श्वरनाथ रेणु के उपरांत हिन्दी में आंचलिक उपन्यास लेखक की एक स्वस्थ परंपरा का आरंभ हुआ जिसके अंतर्गत शिवप्रसाद सिंह, रामदरश मिश्र, शैलेष मटियानी, भैरव प्रसाद गुप्त, बलभद्र ठाकुर, बलवंत सिंह, देवेन्द्र सत्यार्थी, रांगेय राघव, उदयशंकर भट्ट, राजेन्द्र अवस्थी, राही मासूम रज़ा, विवेकी राय, श्रीलाल शुक्ल, जगदीश चंद्र, वीरेन्द्र जैन, अब्दुल बिस्मिल्लाह, भग. वानदास मोरवाल, हिमांशु जोशी, संजीव, मैत्रेयी पुष्पा, एस.आर.हरनोट, सुभाष पंत, राकेश कुमार सिंह तथा महुआ माजी आदि ने अपना साहित्यिक योगदान देते हुए बहतरीन उपन्यास प्रदान किए।

किसी भी उपन्यास को आंचलिकता का जामा पहनाने वाले कुछ विशेष तत्त्व होते हैं जिनके कारण कोई भी रचना आंचलिक विशेषण से विभूषित हो पाती है। यदि इन तत्त्वों की सूक्ष्म विवेचना की जाए तो एक लम्बी सूची तैयार की जा सकती है। क्योंकि कोई भी रचना सिद्धांत को पढ़कर नहीं लिखी जाती बल्कि साहित्यकार अपने विचारों व भावों को अभिव्यक्त करता है जो धीरे–धीरे किसी न किसी सिद्ध ांत के दायरे में आ जाते हैं और कई बार कोई नवीन सिद्धांत भी तैयार हो जाता है, आंचलिक उपन्यास भी इसी का परिणाम है। आंचलिक उपन्यास में निम्नवत तत्त्वों का होना अनिवार्य माना जाता है –

अंचल विशेष और जीवन शैली – आंचलिक उपन्यास का आधार तत्त्व ही अंचल है। तब तक कोई भी रचना आंचलिक नहीं कहलाती जब तक कि उसके मूल में किसी न किसी अंचल की कथा न हो अर्थात् आंचलिक उपन्यास का आधार तत्त्व अंचल विशेष है। अंचल की विशिष्टता वहाँ की जीवन शैली के कारण होती है जिसकी अपनी लोक परंपराएँ होती हैं, जिनके कारण उस अंचल का जन–जीवन अन्य परिवेश के जन–जीवन से भिन्न प्रतीत होता है। उपन्यास के जितने पात्र होंगे उनकी सार्थकता भी अंचल विशेष की मिट्टी से जुड़ने पर ही संभव है, जहाँ वे उस अंचल से बाहर गए कि पाठक को उनमें कोई लगाव नहीं रहता। ये अंचल अलग–अलग प्रकार के हो सकते हैं जैसे कोई गाँव, कस्बा या किसी शहर का मौहल्ला जिसका जीवन अपने अंदर विशेषताएँ समाए हुए हो। सामान्यत अंचलों को निम्न श्रेणियों में विभक्त किया जाता है–

1. ग्रामांचल (किसी गांव के जीवन का वर्णन)
2. नगरांचल (नगर के जीवन का चित्रण)
3. वन्यांचल (किसी वन्य प्रदेश से संबंधित जीवन का चित्रण)
4. नद्यांचल (किसी नदी किनारे अंचल के जीवन का चित्रण)

इस प्रकार आंचलिक लेखक के लिए यह आवश्यक है कि इनमें से किसी एक अंचल को केन्द्र में रखकर उस अंचल की जीवन शैली को समग्रता, गंभीरता, व्यापकता और आत्मीयता के साथ इस प्रकार उभारे कि समग्र अंचल जीवंत हो उठे और उस अंचल की जीवन शैली व्यापक जन समूह में अपनी अलग पहचान बना सके।

समग्र जीवन का सजीव चित्रण – आंचलिक उपन्यास में अंचल विशेष के समग्र जन–जीवन का रूपात्मक चित्रण किया जाता है। समग्र से अभिप्राय उस अंचल विशेष के बाह्य और आंतरिक जीवन को सम्पूर्णता के साथ उभारने से है। क्योंकि कोई भी अंचल हो, वह सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक व सांस्कृतिक सभी दृष्टियों से एक सम्पूर्ण इकाई स्वीकारा जाता है। इसलिए उस अंचल विशेष में निव. ास करने वाली जातियों की जीवन–पद्धति अर्थात् उनकी सभ्यता, संस्कृति, वेशभूषा, रहन–सहन,

******** फणीश्वरनाथ 'रेणु', मैला आंचल, राजकमल प्रकाशन, 1954, पृष्ठ 5

मान्यताओं, रीति-रिवाजों तथा सामाजिक, आर्थिक, भौगोलिक स्थिति का समग्रता के साथ सजीव अंकन किया जाता है। जीवन का यह अंकन यथार्थपरक दृष्टि से किया जाता। आंचलिक उपन्यास इसी यथार्थवाद के कारण समाज व जीवन की प्रतिकृति बनता है। जीवन के यथार्थ का संपूर्ण रूप आंचलिक उपन्यासों में व्यक्त होता है। यथार्थवाद के दोनों रूप प्रकृतिवाद और सामाजिक यथार्थवाद आंचलिक उपन्यासों में प्राप्त होते हैं। किन्तु ये यथार्थवाद उस सीमा तक ही प्रयोग होता है जिससे उपन्यास में अंचल विशेष की आंचलिकता खण्डित न हो।

लोक संस्कृति का चित्रण- लोक संस्कृति लोकजीवन की धड़कन मानी जाती है क्योंकि आंचलिक उपन्यास लोक जीवन की गाथा को व्यंजित करते हैं इसलिए इनमें लोक संस्कृति की जीवंत झलक मिलना परमावश्यक माना जाता है। लेखक अपनी विशेष शैली में लोक संस्कृति के विभिन्न उपादानों से इस प्रकार अंचल के जीवन का वर्णन करता है कि उस अंचल का सारा परिवेश ही जीवंत हो उठता है। लोक संस्कृति का सफल चित्रण ही सफल आंचलिक उपन्यास का आधार माना जाता है। डा.ह.क. कड़्वे के मतानुसार 'आंचलिक उपन्यास में लोगों की रहन-सहन, वेशभूषा, खान-पान, परम्पराओं, त्यौहारों, मनोरंजन के साधनों, विश्वासों, अन्धश्रद्धाओं आदि का चित्रमय शैली में वर्णन प्राप्त होता है। जन जीवन की विभिन्न सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक, नैतिक आदि समस्याओं का उद्घाटन किया जाता है। आंचलिक उपन्यास में अंचल विशेष का सम्पूर्ण सांस्कृतिक जन जीवन मुखर हो उठता है।'[*******] आंचलिक उपन्यास में लोक संस्कृति का विशेष महत्त्व रहता है। इस संबंध में डा. कड़्वे लिखते हैं-''आंचलिक उपन्यास में किसी अंचल विशेष की प्राकृतिक पार्श्वभूमि में उसके समग्र सांस्कृतिक लोक जीवन की गतिशीलता एवं मानवीय चेतना का सम्वेदनापूर्ण वर्णन स्थानीय बोली के द्वारा यथार्थवादी दृष्टि से किया जाता है।''[********] इस प्रकार कहा जा सकता है कि आंचलिक उपन्यास का आधार तत्त्व यदि अंचल है तो अंचल का प्राण तत्त्व लोक संस्कृति है। यह लोक संस्कृति ही होती है जो अंचल की जीवन शैली को उभारती है। किसी अंचल की लोक संस्कृति जितनी अधिक प्रखरता से उभरती है, उस अंचल की जीवन शैली उतनी ही व्यापकता के साथ सामने आती है। इसलिए आंच. लिक उपन्यास में जितनी अनिवार्यता अंचल व जीवन शैली की है उतनी ही लोक संस्कृति की भी है।

आंचलिक पात्र- आंचलिक उपन्यासों के पात्र भी स्थानीय होते हैं अर्थात् वे पात्र उस अंचल के जीवन के अनुरूप तथा वहां की परिस्थितियों को व्यक्त करने में सक्षम होते हैं। सामान्यत: उपन्यास में एक या दो पात्र प्रधान होते हैं और अन्य पात्र गौण होते हैं। लेखक भी किसी एक पात्र की ओर ही अधिक ध्यान केन्द्रित करता है अर्थात् नायक अथवा नायिका की स्थिति सदैव रहती है। किन्तु आंचलिक उपन्यास में ऐसी स्थिति नहीं होती यहां लेखक एक साथ अनेक पात्रों को विकसित करता है। पात्रों की वेशभूषा, रहन-सहन, खान-पान, आचार-विचार सब कुछ स्थानीय होते हैं, पात्रों द्वारा प्रयोग की जाने वाली भाषा में आंचलिक शब्दों का प्रयोग होता है, लोकोक्तियों एवं मुहावरों का प्रयोग पात्र अपनी बातों को सारगर्भित बनाने के लिए करते हैं। पात्रों के आपसी संबंध, आपसी विवाद सब कुछ स्थानीय होते हैं परिणाम स्वरूप एक विशेष जीवन शैली हमारे समक्ष प्रस्तुत हो पाती है। आंचलिक उपन्यास सामान्यत: व्यक्तिपरक न होकर प्रतिनिधि पात्र होते हैं जो आंचलिक जीवन के विविध पहलुओं का प्रतिनिधित्व करते है। इस संबंध में डा.नगीना जैन का मानना है-''आंचलिक उपन्यास के पात्र के चित्रण की प्रणाली व्यक्तिपरक न होकर वर्गपरक या जातिपरक होती है। पात्र अपना प्रतिनिधि नहीं होता, वह वर्ग या जाति के संस्कारों का प्रतिनिधित्व करता है; अत: उसकी निश्चित क्रिया-प्रतिक्रिया होती है, तथा वह एक निश्चित दायित्व का वहन करता है। वह सामान्य चरित्र में जीता है। अंचल के जन-जीवन के विभिन्न पहलुओं का प्रतिनिधित्व करता हुआ यह पात्र उपन्यास का 'अनुसन्धानिक

******** डॉ. ह.क.कड़्वे, हिन्दी उपन्यासों में आंचलिकता की प्रवृत्ति, अन्नापूर्णा प्रकाशन, कानपुर 1978ए पृष्ठ 27

******** वही, पृष्ठ 27

माध्यम' होता है।''''''''

अत: कहा जा सकता है कि लेखक अंचल के वास्तविक जीवन की अभिव्यक्ति के लिए स्थानीय पात्रों का चयन करता है और ये पात्र यथार्थ जीवन से संबंधित होते हैं। भले ही लेखक कुछ काल्पनिक पात्रों को इन उपन्यासों में स्थान देता है परंतु वह भी कहीं प्रमुख भाव में बाधा उत्पन्न नहीं करते बल्कि उस मूल भाव को आगे बढ़ाने में लेखक की सहायता करते हैं। पात्रों का पहनावा, खान-पान, बोली आदि सभी कुछ अंचल विशेष की जीवन शैली के अनुरूप ही होता है। आंचलिक पात्रों को व्यक्तिपरक न समझ कर समुदाय अथवा वर्ग के रूप में देखना चाहिए। कुछ समीक्षक यह भी मानते हैं कि आंचलिक पात्र अपढ़ होते हैं। परंतु जैसा अंचल होता है पात्र उसके अनुरूप होते हैं। यदि अंचल के रूप में कोई विश्वविद्यालय परिसर होता है तब वहां का पात्र सुशिक्षित और सुसंस्कृत व्यक्ति होता है। आंचलिक पात्रों के संबंध में सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि आंचलिक पात्र अपने परिवेश के साथ न्याय करने वाले होने चाहिए। अत: पात्र स्थानीय रंग को सजीवता और समग्रता के साथ उभार सकने में सक्षम होने चाहिए।

ध्वनि सौन्दर्य एवं स्थानीय भाषा का प्रयोग – देवेन्द्र नाथ शर्मा ने भाषा के संबंध में लिखा है-'' भाषा शब्द का प्रयोग कई अर्थों में होता है। सामान्य रूप से भाषा उन सभी माध्यमों का बोध कराती है जिनसे भावाभिव्यंजन का काम लिया जाता है।''''''''' आंचलिक उपन्यासों में आंचलिक जीवन को चित्रित करना लेखक का अभिप्रेत होता है और स्थानीय (अंचल विशेष की) भाषा के बिना आंचलिक जीवन पहचान-शून्य बनकर रह जाता है। स्थानीय भाषा के सफल प्रयोग से ही आंचलिक जीवन अपनी समग्रता के साथ जीवंत हो उठता है, इसलिए स्थानीय भाषा का प्रयोग आंचलिक उपन्यासों का अनविार्य तत्त्व बन जाता है। स्थानीय भाषा प्रयोग का यह अर्थ बिल्कुल नहीं है कि लेखक समग्र उपन्यास में ठेठ शब्दावली का ही प्रयोग करे, बल्कि केवल वहीं ठेठ शब्दों का प्रयोग करे जिनसे उस क्षेत्र विशेष की पहचान स्थापित होती है। क्योंकि समग्र उपन्यास में ठेठ शब्दावली का प्रयोग करने से जो लोग उस भाषिक खण्ड के अंतर्गत नहीं आते उन्हें उस जीवन को समझने में अत्यंत कठिनाई का अनुभव होगा। उदाहरणार्थ यदि उपन्यास बिहार के किसी अंचल से संबंधित है और सम्पूर्ण उपन्यास में बिहारी के ठेठ शब्दों की भरमार है तो पंजाब या किसी दूसरे राज्य के लोग उस उपन्यास को पढ़कर अंचल विशेष के जीवन से गम्भीरता से अर्थात् उसके आंतरिक पक्ष से साक्षात् नहीं हो पायेंगे, ये आंचलिक उपन्यास की एक सीमा भी कही जा सकती है।

लोक संस्कृति लोक भाषा के अभाव में मृत समझी जाती है। लोक भाषा में ठेठ शब्दों का प्रयोग भी होता है और लोक गीत भी लोक भाषा में ही गाए जाते हैं। अत: अंचल के लोक जीवन के चित्रण में लोक के शब्दों, लोकगीतों, लोक विश्वासों, लोक परंपराओं, रीति-रिवाजों आदि के वर्णन में लोक भाषा का प्रयोग अत्यंत अनिवार्य बन जाता है। किन्तु लोकभाषा (स्थानीय भाषा) का प्रयोग करने से उपन्यास दुर्बोध नहीं बनना चाहिए बल्कि उसमें रस संचार होना चाहिए। लोक के प्रचलित मुहावरों व लोकोि. क्तयों का वर्णन भी यथा संभव होना चाहिए। अपभ्रंश शब्दों का प्रयोग इन रचनाओं की आंचलिक पहचान का द्योतन कराता है। अनपढ़ पात्रों द्वारा सामान्य शब्दों के अपभ्रंश प्रयोग जैसे वलन्टियर को भोलन्टियर, वायसचेयरमैन को भैंसचरमन, गांधी को गन्हीं, ज़िन्दाबाद को जिन्दाबाघ आदि से रचना में निहित आंचलिकता का बोध होता है। आदर्श सक्सैना का मानना है कि अपभ्रंश शब्दों, मुहावरों और लोकोक्तियों आदि से आंचलिकता उभरती है-''आंचलिकता के हल्के गहरे रूप की शब्दों के लो. कप्रचलित रूपों तथा आंचलिक भाषा के शब्दों, मुहावरों तथा लोकोक्तियों के खुले प्रयोग द्वारा प्राप्त

******** डॉ. कु0 नगीना जैन, आंचलिकता और हिन्दी उपन्यास, अक्षर प्रकाशन, 1976, पृष्ठ 41

******** देवेन्द्रनाथ शर्मा, भाषाविज्ञान की भूमिका, राधाकृष्ण प्रकाशन, 1966, पृष्ठ 19

किया जाता है। इस प्रयत्न में शब्दों के विकृत रूप भाव–प्रवणता की दृष्टि से अपना विशेष महत्त्व रखते हैं''[8] आंचलिक भाषा के साथ–साथ ध्वनि सौन्दर्य का वर्णन आंचलिक उपन्यासों के लिए नितांत आवश्यक बन पड़ता है। ध्वनि सौन्दर्य से अभिप्राय है कि कुछ प्राकृतिक ध्वनियाँ जो आम शब्दों में व्यक्त नहीं होती, प्लुत स्वर के रूप में प्रकट की जाती हैं उनका वर्णन, चिड़िया की बोली, ढोल की थाप, शहनाई की आवाज़, ट्रेक्टर के चलने की आवाज़, भोंपू के बोलने की आवाज़, कुत्ते के भौंकने की आवाज़, कोयल की आवाज़ आदि ध्वनियों से प्राकृतिक चित्रण जीवन्त हो उठता है। क्योंकि आंचलिक उपन्यास कोरा वर्णन नहीं जीवन की चित्रमयी प्रस्तुति है और ध्वनि सौन्दर्य उस चित्रमय जीवन की धड़कन बनकर धड़कने लगता है जिससे जीवन स्वयं मूर्तिमान हो जाता है। अत: कहा जा सकता है कि आंचलिक उपन्यासों में स्थानीय बोली का प्रयोग बड़े ही संतुलित ढंग से होना चाहिए।इसलिए कहा जा सकता है कि आंचलिकता के प्राण माने जाने वाले इन तत्त्वों के अभाव में आंचलिक रचना का अस्तित्व संभव नहीं है। यह हो सकता है कि किसी आंचलिक कृति में किसी एक तत्त्व की प्रधानता हो, परंतु सफल आंचलिक रचना वही है जिसमें सभी तत्त्वों का समावेश उपयुक्त मात्रा में हो।

आंचलिकता तथा स्थानीय रंगत

स्थानीय रंगत और आंचलिकता एक दूसरे के करीब तथा आपस में मिलती जुलती धारणाएँ हैं। स्थानीय रंगत को किसी प्रदेश विशेष को स्वयं भोगे बिना भी प्रस्तुत किया जा सकता है। मात्र स्थानीय भाषा के प्रयोग के द्वारा भी किसी उपन्यास में स्थानीय रंगत लाई जा सकती है। कथा की पृष्ठभूमि के रूप में स्थानीय रंग का चित्रण किसी भी उपन्यास में मिल सकता है। फणीश्वरनाथ रेणु से पहले शिवपूजन सहाय, वृंदावन लाल वर्मा, प्रेमचन्द आदि की औपन्यासिक कृतियों में स्थानीय रंग प्रचुरता से मिलता है। स्थानीय रंग आंचलिकता का पर्याय नहीं हो सकता, हाँ आंचलिकता में स्थानीय रंग अवश्य समाहित रहता है। स्थानीय रंग को आंचलिकता से भिन्न सिद्ध करते हुए डा. ह.क.कड़्वे का कथन अवलोकनीय है–''स्थानीय रंग आंचलिक उपन्यास का अलंकरणात्मक बाह्यांग है। स्थानीय रंग में प्राकृतिक वर्णन, लोगों की रहन–सहन, खान–पान, वेशभूषा, परंपराओं, स्थानीय बोली एवं लोकगीतों आदि का चित्रण किया जाता है।''[8] शिप्ले ने आंचलिकता और स्थानीय रंगत के भेद को स्पष्ट करते हुए इसे आंचलिकता का बाह्य रूप ही माना है–''आंचलिक लेखक यह देखता है कि प्रत्येक अंचल में किस प्रकार की परिस्थितियाँ वहाँ के निवासियों के जीवन में क्रियाशील रही है जिनसे भिन्न प्रकार की संस्कृति और चरित्र का रूप निर्मित होता है। स्थानीय रंग का चित्रण करने वाला लेखक जनपद या यांत्रिक दृष्टिकोण लेता है। अत: स्थानीय रंग किसी स्थिति, बोली, वेशभूषा, रीति–रिवाजों के स्थूल या बाह्य रूप को प्रस्तुत करता है, कथा के मूल तत्त्वों के रूप में नहीं वरन अलंकरण के रूप में।''[8]

डा. रामदरश मिश्र भी स्थानीय रंगत को आंचलिकता का एक बाह्य उपादान मानते हैं–''आंचलिकता का अर्थ बहुत से लोग स्थानीय रंगत को लगाते हैं, यह भी भ्रम है। स्थानीय रंगत तो प्राय: सभी उपन्यासों में होती है। कथा जिस प्रदेश में बहती है, वहाँ की प्रकृति, वेशभूषा, रीति–रिवाज की रंगत लेखक उपन्यास में देता चलता है। आंचलिक उपन्यास तो अंचल के समग्र जीवन का उपन्यास है। उसका संबंध जनपद से होता है, ऐसा नहीं वह जनपद की ही कथा है। किसी अंचल या जनपद के जीवन से जिन्हें प्रीति होती है ऐसे लेखक भी स्थानीय रंगत देकर सामान्य पात्रों की कथाओं को घट्टि

******** डॉ.आदर्श सक्सैना,हिन्दी आंचलिक उपन्यास तथा उनकी शिल्पविधि, सूर्य प्रकाशन,1971, पृष्ठ 262

******** डा. ह.क.कड़्वे, हिन्दी उपन्यासों में आंचलिकता की प्रवृत्ति, अन्नापूर्णा प्रकाशन, कानपुर 1978ए पृष्ठ 43

******** डिक्शनरी ऑफ वर्ल्ड लिटरेचर टर्म, जोसेफ टी. शिपले, अलैन एवं अनविन प्रकाशन, पृ.186

करते चलते हैं।''''''''' परंतु स्थानीय रंग आंचलिकता का एक आवश्यक अंग स्वीकार किया जा सकता है क्योंकि स्थानीय रंग के अभाव में आंचलिकता प्रकट नहीं हो सकती। स्थानीय रंग आंचलिक प्रवृत्ति का एक विधायक उपादान माना जा सकता है। यह आंचलिक उपन्यास की मूल विशेषता होती है। स्थानीय रंगत द्वारा ही आंचलिक जीवन शैली को जीवंतता प्रदान की जाती है। इस संबंध में विवेकी राय का कथन विचारणीय हैं–''अघोषित अनाम आंचलिकता हिन्दी कथा साहित्य में प्रादेशिक छवि बनकर, क्षेत्रीय आभा बनकर अथवा स्थानीय रंग के रूप में उभर कर उसे जीवंत बना देती है।''''''''' डा.नगीना जैन आंचलिक उपन्यास में स्थानीय रंग के महत्त्व के संबंध में लिखती हैं–''आंचलिक उपन्यास में स्थानीय रँग अन्य उपन्यासों की तरह कथा का शृंगार–प्रसाधन बनकर पृष्ठभूमि सज्जा का कार्य नहीं करती, बल्कि अनिवार्य आवश्यकता के रूप में होता है। अंचल के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए एक विशेष दृष्टिकोण बनाकर स्थानीय रंगत का प्रयोग होता है। इसलिए आंचलिक उपन्यास 'लोकल कलर' के उपन्यासों से सर्वथा भिन्न है।''''''''' इस प्रकार हम कह सकते हैं कि आंचलिक उपन्यास लेखन में स्थानीयता एक प्रभावपूर्ण और मूल तत्त्व है। जो आलोचक स्थानीयता को आंच. लिकता का बाह्यांग सिद्ध करने का प्रयास कर रहे हैं, वे किसी पूर्व निर्मित धारणा के आधार पर ऐसा कहते हैं। इस में कोई सन्देह नहीं कि आंचलिकता और स्थानीय रंग में पर्याप्त अंतर है। आंचलिकता की व्यापक धारणा में स्थानीय रंग भी अन्य तत्त्वों की भांति एक तत्त्व के रूप में ही समाहित हो जाता है, परंतु यह बात ध्यान देने योग्य है कि अन्य तत्त्वों के होने पर भी यदि रचना में स्थानीय रंगत नहीं है, तो रचना की आंचलिकता पर प्रश्न चिह्न लग सकता है। स्थानीय रंगत और आंचलिकता को एक उदाहरण के द्वारा समझा जा सकता है। जिस प्रकार एक स्वर्णाभूषण होता है और एक चांदी के आभ. ूषण पर स्वर्ण का पानी चढ़ाया होता है।

दोनों की चमक एक जैसी होती है, चांदी के आभूषण पर चढ़ाया स्वर्ण का पानी उसे स्वर्णिम आभा तो दे सकता है परंतु उसे स्वर्णाभूषण नहीं बना सकता है। इसी प्रकार रचना में स्थानीय रंग रचना को आंचलिक परिधान प्रदान करते हैं परंतु स्थानीय रंग अपने आप में आंचलिकता हो, ऐसी कोई स्थिति नहीं होती। यही कारण है कि वृंदावन लाल वर्मा के उपन्यासों में निहित स्थानीय रंग के आध ार पर कुछ आलोचक उन्हें आंचलिक समझने की भूल कर बैठते हैं, परंतु वे चांदी के स्वर्णिम आभा वाले आभूषण हैं, न कि स्वर्णाभूषण। वृन्दावन लाल वर्मा के उपन्यासों में स्थानीय रंग ऐतिहासिकता के परिप्रेक्ष्य में है, न कि आंचलिक जीवन को चित्रण करने के संबंध में। इस संबंध में डा.ह.क.कड़्वे का विचार अवलोकनीय है–''वृन्दावन लाल वर्मा के अधिकांश उपन्यास इस प्रकार के प्रभावी स्थानीय रंग से युक्त हैं। उनमें बुन्देलखण्ड का जन–जीवन अपनी समग्रता के साथ सजीव एवं मुखर हो उठा है।''''''''' अत: कहा जा सकता है कि आंचलिकता का स्थानीय रंगत से गहरा संबंध है। आंचलिकता में इन तत्त्वों का होना अनिवार्य तो है किन्तु ये आंचलिकता का पूरक नहीं है। जिस प्रकार आंचलिक उपन्यास के अन्य तत्त्व होते हैं ऐसे ही स्थानीयत रंग एक तत्त्व हैं। समग्र तत्त्वों के साथ मिलकर ये तत्त्व आंचलिक रचना का सृजन तो करता हैं परंतु केवल स्थानीय रंगत वाले उपन्यास आंचलिक उपन्यास नहीं कहला सकते। लेखक अपनी रचना में स्थानीय रंग की सहायता से ऐसे वातावरण का सृजन करता है जिसमें स्थानीय रंग अपनी सम्पूर्ण परिवेशगत पहचान के साथ उभरे ताकि वह अनायास व्यापक क्षेत्र के भीतर अंचल विशेष के रूप में अपनी विशेष पहचान अंकित करवा सके।

******** डा. रामदरश मिश्र, हिन्दी उपन्यास : एक अन्तर्यात्रा, राजकमल प्रकाशन, 2002, पृष्ठ 224–225

******** आलोचना (पत्रिका) अप्रैल–जून 1984, हिन्दी आंचलिक उपन्यास बनाम लोक चेतना, विवेकी राय, पृष्ठ45

******** डॉ. कु0 नगीना जैन, आंचलिकता और हिन्दी उपन्यास, अक्षर प्रकाशन, 1976, पृष्ठ 33

******** डा.ह.क.कड़्वे, हिन्दी उपन्यासों में आंचलिकता की प्रवृत्ति, अन्नापूर्णा प्रकाशन, कानपुर 1978ए पृष्ठ 43–44

आंचलिक उपन्यास और नायक की संकल्पना

कथा–साहित्य में पात्र संयोजन की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। उपन्यास और कहानी दोनों में पात्रों का एक जैसा महत्त्व होता है। पात्रों के द्वारा ही कथा आगे बढ़ती है। इन पात्रों में एक नायक और एक नायिका होती है। कई बार रचना में नायक और नायिका दोनों उपस्थित होते हैं और कई बार दोनों में से एक होता है। उपन्यास के अन्य पात्र नायक के चरित्र को उजागर करने के लिए संयोजित होते हैं और नायक के इर्द–गिर्द उसी प्रकार घूमते रहते हैं जैसे सूर्य के चारों ओर अन्य ग्रह परिक्रमा करते रहते हैं। नायक के अभाव में कथा आगे नहीं बढ़ती। परंतु आंचलिक उपन्यास इस संकल्पना के अपवाद के रूप में सामने आये। हिन्दी के अधिकाँश आलोचकों ने आंचलिक उपन्यासों के संबंध में एक स्वर में स्वीकार किया है कि इन उपन्यासों में परंपरागत नायक की अवधारणा नहीं है, अर्थात् कोई पात्र अथवा पात्रा नायक या नायिका का स्थान नहीं लेता बल्कि स्वयं अंचल ही नायक बनकर उभरता है। डा.कड़वे आंचलिक उपन्यास में अंचल को नायक स्वीकार करते हैं।[*******] इस विचारधारा को मानने वाले आलोचकों की यह धारणा है कि आंचलिक उपन्यासों में चतुर्मुखी दृष्टि से अंचल को इतना अधिक उभारा जाता है कि वही प्रमुख हो जाता है, अर्थात् अंचल नायक बन जाता है और पात्र गौण हो जाते हैं। आंचलिक उपन्यास में लेखक की यह कोशिश होती है कि अंचल पर समग्र पक्षों से दृष्टिपात किया जाए और इसी कोशिश में वह अंचल को केन्द्र में रखकर चलता है, न कि किसी पात्र व पात्रा को। अब प्रश्न यह उठता है कि क्या जीवन्त पात्रों के स्थान पर किसी भौतिक परिवेश को नायक की संज्ञा दी जा सकती है?

सामान्यत: नायक वह होता है जो कथा को आगे बढ़ाता है और यदि अंचल नायक है तो क्या जीवंत पात्रों के बिना अकेला अंचल कथा को आगे बढ़ा सकता है? यहां आंचलिक उपन्यास के नायक संबंधी प्रचलित अवधारणा अप्रासंगिक सिद्ध होती है। क्योंकि रचना का नायक कोई न कोई जीवंत पात्र ही होता है, यदि आंचलिक उपन्यास के सभी प्रमुख जीवंत पात्रों को कथा से बाहर निकाल लिया जाए तो क्या अकेले अंचल के सहारे उपन्यास की कथा चल पाएगी ? बिल्कुल नहीं। अब प्रश्न यह उठता है कि आंचलिक उपन्यास में कोई भी पात्र ऐसा नहीं होता जो नायक का स्थान ले सके, संपूर्ण कथा को प्रभावित कर सके, ऐसी स्थिति में कोई जीवंत पात्र नायक कैसे हो सकता है। जैसा कि पहले स्पष्ट किया जा चुका है कि आंचलिक उपन्यास के पात्र व्यक्तिपरक न होकर समुदायपरक होते हैं अर्थात् वे एक पूरे समुदाय की मनोवृतियों को प्रतिनिधित्व प्रदान करते हैं। उपन्यास में यदि एक पात्र धार्मिक पक्ष को आगे बढ़ा रहा होता है तो दूसरा सामाजिक पक्ष को गति प्रदान कर रहा होता है। इसी प्रकार उपन्यास में अन्य पात्र राजनीतिक, आर्थिक तथा लोक पक्ष को उजागर करने का कार्य करते है। इस दृष्टि से हम यह कह सकते हैं कि आंचलिक उपन्यास में नायकत्व किसी एक पात्र में दिखाई नहीं देता बल्कि वह अनेक पात्रों में एक साथ समानांतर दिखाई देता है अर्थात् आंचलिक उपन्यास में एक नायक न होकर एक से अधिक नायक होने की स्थिति होती है।

'मैला आंचल' में एक साथ डा. प्रशांत, बालदेव, कालीचरन, तहसीलदार, बावनदास आदि अनेक पात्रों में अनेक स्थानों पर नायकत्व दिखाई देता है। 'अलग अलग वैतरणी' में जैपाल सिंह, बुझारथ सिंह, सुरजु सिंह, विपिन, जग्गन मिसिर, शशिकांत आदि पात्रों में नायकत्व देखने को मिलता है। 'जल टूटता हुआ' में सतीश, दीनदयाल, महीप सिंह, कुंजु, रामकुमार, बंशी तिवारी, सुग्गन तिवारी, चंद्रदीप आदि पात्र अलग–अलग स्थानों पर नायक होने का अपना दावा प्रस्तुत करते हैं। 'झीनी झीनी बीनी चदरिया' में मतीन, हाजी अमीरुल्ला साहब, लतीफ, इकबाल आदि के नायक होने का भ्रम होता है। 'पहाड़ चोर' में पहले महेसु, गुपाल तथा रामपत में नायक होने का भ्रम होता है, पंरतु आगे चलकर साबरा नायक की भूमिका निभाने लगता है। कई बार किसी प्रमुख पात्र को केन्द्र में रखकर लेखक अंचल के जीवन को इस प्रकार से उभारता है कि वह पात्र हमें रचना का नायक लगने लगता

******** वही, पृष्ठ 31

है, जैसे बलचनमा, काला पहाड़, हिडिम्ब तथा पठार पर कोहरा आदि। अत: कहा जा सकता है कि आंचलिक उपन्यास में कोई एक पात्र नाायक न होकर नायकत्व एक साथ अनेक पात्रों में विद्यमान रहता है। 'अंचल' को नायक की संज्ञा देना रचना में निहित संपूर्ण जीवन शैली जिस के कारण रचना में आंचलिकता उत्पन्न होती है, को नज़र-अंदाज़ करना होगा। 'अंचल' अपने आप में एक भौगोलिक स्थिति है, उस भौगोलिक स्थिति में जो धड़कन हमें सुनाई देती है, वह धड़कन जीवन-शैली की है, जो उस भौगोलिक परिवेश को अन्य परिवेश से काट कर विशेष बना देती है। इस जीवन-शैली की विशिष्टता भाषा और संस्कृति के कारण है जिसकी अभिव्यक्ति जीवंत पात्रों से ही संभव है। इसलिए आंचलिक उपन्यास का नायक भी जीवंत पात्र को ही मानना चाहिए। आंचलिक उपन्यास के संबंध में यह अवश्य कहा जा सकता है कि किसी एक पात्र को नायक समझकर अन्य पात्रों की भूमिका को गौण नहीं समझना चाहिए, प्रत्येक पात्र किसी न किसी वर्ग का प्रतिनिधि होने के कारण अपने आप में कहीं न कहीं नायक ही होता है। अत: कहा जा सकता है कि आंचलिक उपन्यास में किसी एक पात्र में नायकत्व होने की बजाये एक से अधिक पात्रों में एक साथ समानांतर दिखाई देता है।

आंचलिक उपन्यास का 'अंचल' : गाँव अथवा शहर

आंचलिक उपन्यासों के संबंध में यह प्रश्न उठाया जाता है कि 'अंचल' के रूप में जिस भू-भाग की बात की जाती है, वह भू-भाग गांव का होता है अथवा नगर का ? इस संबंध में समीक्षकों के दो मत हैं। पहले मत के अनुसार वही उपन्यास आंचलिक होते हैं जिनके मूल में ग्रामांचल होता है। नंद दुलारे वाजपेयी, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, शिवप्रसाद सिंह, आदर्श सक्सैना आदि आलोचक इसी विचारध ाारा के हैं। परन्तु दूसरी और महेन्द्र चतुर्वेदी, हीराप्रसाद त्रिपाठी, कांति वर्मा, सुषमा प्रियदर्शिनी, नगीना जैन, इन्द्र प्रकाश पाण्डेय आदि समीक्षक मानते हैं कि गांव के अतिरिक्त नगर के परिवेश को आधार बनाकर भी आंचलिक उपन्यासों की रचना हो सकती है। इस संबंध में इनका अलग-अलग विवेचन अनिवार्य जान पड़ता है।

(क) अंचल गाँव- फणीश्वरनाथ रेणु के 'मैला आंचल' में आंचलिक विशेषण का प्रयोग हुआ। तदुरांत परती परिकथा, के मूल में भी परानपुर गांव था। इस के परिणाम स्वरूप यह अर्थ स्वीकारा गया कि आंचलिक उपन्यास का मूल अंचल कोई गांव ही हो सकता है। गांव के उन्मुक्त जीवन को इसके लिए आवश्यक मानते हुए आ0 नंद दुलारे वाजपेयी का कथन है-''उपन्यास के ऐतिहासिक विकास को देखते हुए और आंचलिक उपन्यास के सीमित और पारिभाषिक अर्थ का ध्यान न रखते हुए नगर से संबंधित उपन्यासों को आंचलिक नहीं कहा जा सकता। वह वैचित्र्य, वह स्वच्छन्द व्यवहार, सभ्यता के दोषों से रहित व आदिम मानव-प्रकृति जो आंचलिक उपन्यासों की केन्द्र वस्तु है, नागरिक चित्रण में नहीं आ सकती।''******** आ0 नंद दुलारे वाजपेयी के वक्तव्य से इस बात की पुष्टि तो अवश्य होती है कि अंचल का जीवन स्वच्छन्द व सभ्यता के दोषों से परे अर्थात् प्रकृति की गोद का है किन्तु इसके लिए केवल गाँव ही अंचल हो इस पर उनका तर्क अधिक संगत प्रतीत नहीं होता। डा. आदर्श सक्सैना ने इस विषय पर गहरा चिंतन मनन करने के पश्चात् लिखा है-''आंचलिकता का नगरीय परिवेश से उतना ही अंतर है जितना अंचल का साड़ी के छोर से है। अंचल वह होता है जिसमें प्यार, दुलार, जीवन और बलिदान छिपा होता है, वह उन भावनाओं की अभिव्यक्ति करता है जो नारी हृदय की शाश्वत निधि होती है।.....उस छोर को अंचल कहलाने का अधिकार नहीं जिसकी छाया में संतान तक नहीं पलती, संतान को नौकरों और आयाओं की देखभाल में छोड़कर जिसे केवल प्रदर्शन की वस्तु बनाकर संतोष किया जाता है। अंचल में पवित्रता व त्याग छिपा होता है, उसमें कृत्रिमता एवं प्रदर्शन का आभाष मात्र

******** नंद दुलारे वाजपेयी, 'सारिका' मासिक पत्रिका, अक्तूबर 1961,

भी नहीं होता।''''''''' अत: कहा जा सकता है कि इन समीक्षकों ने मूल अंचल को आधार बनाने की बजाये जीवन व्यतीत करने की प्रणाली को आधार बनाया है जिसकारण इन्हें गांव की जीवन प्रणाली अधिक आकर्षक लगी और इन्होंने अंचल के लिए ग्रामीण परिवेश के पक्ष में खड़े होने का ऐलान कर दिया। इस प्रकार इन का दृष्टिकोण एकपक्षीय है।

(ख) अंचल नगर और गाँव दोनों – दूसरी ओर कुछ समीक्षकों का मानना है आंचलिक उप. न्यासों में अंचल केवल ग्रामांचल हो यह अनिवार्य नहीं है, नगरांचल भी आंचलिक उपन्यासों का विषय हो सकता है। इस सन्दर्भ में विद्वानों ने जो तर्क दिए हैं, उनमें से कुछ पर दृष्टिपात करना अनिवार्य जान पड़ता है। श्री महेन्द्र चतुर्वेदी ने नगरांचल को भी आंचलिक उपन्यास के अंचल के रूप में स्वीकार किया है। उनका मानना है–''आंचलिक उपन्यास की वर्ण्य वस्तु विशुद्ध रूप से ग्रामीण हो यह अनिवार्य नहीं है। किसी उप–नगर को भी कथाक्षेत्र के रूप में ग्रहण किया जा सकता है। यह भी हो सकता है कि कथाँचल का एक रुख गांव की ओर हो और दूसरा शहर की। हिन्दी में पहले प्रकार का उदाहरण 'सागर लहरें और मनुष्य' है और दूसरे प्रकार का 'बयां का घोसला और सांप' है। किन्तु फिर भी ये कृतियाँ अपवाद स्वरूप ही है। आंचलिक उपन्यास को भावी समृद्धियों की ओर इंगित करने वाली कृतियां वे ही हैं, जिन्होंने गांव को कथाधार के रूप में ग्रहण किया है।''''''''' नगरांचल को स्वीकार करते हुए भी श्री महेन्द्र चतुर्वेदी ने नगरांचल को गौण माना है और ग्रामांचल को प्रमुख। उन्होंने आंचलिकता का आध ाार तत्त्व ग्रामांचल को ही स्वीकारा है। इसी दिशा में विचार करते हुए श्री हीरा प्रसाद त्रिपाठी ने मुक्त कण्ठ से नगरांचल के पक्ष में लिखा है–''आंचलिक उपन्यासों का कथांचल गांव ही हो ऐसा अनिवार्य नहीं। किसी बड़े शहर के 'सबर्ब' को अपना कथा–क्षेत्र बनाने वाले उपन्यास भी आंचलिक हो सकते हैं।''''''''

यहाँ श्री त्रिपाठी ने जिस 'सबर्ब' ;नइनतइद्ध शब्द का प्रयोग किया है उसका शाब्दिक अर्थ है– उप. नगर, नगर के आस–पास की भूमि, शहर के आस–पास का इलाका।''''''''' अर्थात् नगरांचल का अर्थ भी शहर के आस–पास स्थित आबादी से ही लिया जाता है। यहां श्री त्रिपाठी ने भले ही नगर के अंचल होने की बात तो स्वीकारी है किन्तु केवल 'सबर्ब' तक सीमित कर दिया है, इसे आगे नहीं बढ़ा सके। इस प्रकार दबे पांव उन्होंने भी अंचल का अर्थ पिछड़ा हुआ भू–खण्ड (देहात) से लिया है, जिसे सबर्ब की संज्ञा प्रदान कर दी। इसके विपरीत डा.कांति वर्मा ने ग्रामांचल के साथ–साथ नगरांचल के पक्ष में अपने विचार सशक्त ढंग से प्रस्तुत किए हैं। उनका मानना है–''आंचलिक शब्द का तात्विक अर्थ यह नहीं है कि केवल ग्रामीण कथाएँ ही इसके क्षेत्र में आयें बल्कि किसी छोटे शहर की विशेषता को उभारने वाला साहित्य भी आंचलिकता की सीमा में आ जाता है। हिन्दी में कितने ही उपन्यास इस प्रकार के लिखे गए हैं जिनमें छोटे शहरों की सांस्कृतिक, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक स्थितियों का चित्रण हुआ है और उनमें आंचलिकता के अन्य सब तत्त्व भी पाये जाते हैं।''''''''' डा. वर्मा की इस टिप्पणी से इसी तथ्य का स्पष्टीकरण होता है कि आंचलिकता तत्त्वों में निहित होती है, न कि इसके ग्रामांचल और नगरांचल होने में।

इन दोनों प्रकार के समीक्षकों के विचार जानने के पश्चात् कहा जा सकता है कि आंचलिक उपन्यास का केन्द्र अंचल विशेष होता है जिसकी अपनी विशेष संस्कृति होती है और विशेष जीवन शैली होती

******** डा. आदर्श सक्सैना, हिन्दी के आंचलिक उपन्यास और उनकी शिल्प विधि, सूर्य प्रकाशन, 1971, पृष्ठ 27–28

******** श्री महेन्द्र चतुर्वेदी, हिन्दी उपन्यास एक सर्वेक्षण, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1962, पृष्ठ 207–208

******** श्री हीराप्रसाद त्रिपाठ, 'आंचलिक उपन्यास' ग्रामीण मध्यम वर्ग, कल्पना, मई 1958

******** सटैंडर्ड कोइसी ड्क्शनरी, स्टैंडर्ड बुक कंपनी, पृष्ठ 548

******** डा. कांति वर्मा, स्वातन्त्र्येत्तर हिन्दी उपन्यास, अनंग प्रकाशन, 2002, पृष्ठ 184

है। यह अंचल ग्राम का भी हो सकता है और नगर का भी। अंचल के मूल में ग्राम या नगर का होना मुख्य बात नहीं है, मुख्य बात है उस अंचल के जीवन में वैशिष्ट्य का होना अर्थात् उपन्यास में विवेचित अंचल में उल्लिखित जीवन–शैली। उपन्यास में वर्णित अंचल की जीवन शैली में वैशिष्ट्य होगा तो वह आंचलिक उपन्यास की परिधि में समाएगा फिर भले ही वह अंचल कोई कस्बा हो, महानगर की बस्ती हो, नगर का कोई मौहल्ला हो, कोई ग्राम हो, कोई कबीला हो, या फिर कोई परिसर (ब्ंउचने) हो। अत: आंचलिकता अंचल की जीवन–शैली में है, न कि उसके ग्रामीण होने में है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि आंचलिकता कोई बाह्य लेबल नहीं है जिसे किसी भी रचना पर लगाया जा सके। आंचलिकता किसी रचना की संरचनात्मक विशेषता नहीं अपितु किसी रचना का भावात्मक एवं शैलीगत वैशिष्ट्य है, जिससे कोई रचना उपर्युक्त विशिष्ट गुणों से युक्त होकर किसी अंचल विशेष की समग्र संस्कृति की संवाहिका बन जाती है। आंचलिक उपन्यास में कोई पात्र नायक अथवा नायिका नहीं कहा जा सकता क्योंकि समग्र अंचल संपूर्ण इकाई के रूप में चित्रित होकर जीविंत हो उठता है। हिन्दी में आंचलिक उपन्यास लेखन की यह स्वस्थ परंपरा निरंतर प्रवाहमान है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

(क) पुस्तकें:

1. आदर्श सक्सैना, हिन्दी के आंचलिक उपन्यास और उनकी शिल्प विधि, सूर्य प्रकाशन, 1971
2. कुमारी नगीना जैन, आंचलिकता और हिन्दी उपन्यास, अक्षर प्रकाशन, 1976
3. कांति वर्मा, स्वातन्त्र्येत्तर हिन्दी उपन्यास, अनंग प्रकाशन, 2002
4. देवेन्द्रनाथ शर्मा, भाषाविज्ञान की भूमिका, राधाकृष्ण प्रकाशन, 1966, पृष्ठ
5. महेन्द्र चतुर्वेदी, हिन्दी उपन्यास एक सर्वेक्षण, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1962
6. रामदरश मिश्र, हिन्दी उपन्यास : एक अन्तर्यात्रा, राजकमल प्रकाशन, 2002
7. वंशीधर, हिन्दी के आंचलिक उपन्यास : सिद्धांत और समीक्षा, भाषा प्रकाशन, 1983

(ख) पत्रिकाएं:

1. 'सारिका' मासिक पत्रिका,, अक्तूबर 1961,
2. 'आलोचना', राजकमल प्रकाशन, अप्रैल–जून 1984
3. कल्पना, कल्पना सहयात्रा प्रकाशन, मई 1958

(ग) शब्दकोष:

1. ड्क्शनरी ऑफ वर्ल्ड लिटरेचर र्टम, जोसेफ टी. शिपले, अलैन एवं अनविन प्रकाशन, 1971
2. स्टैंडर्ड कोइसी डिक्शनरी, स्टैंडर्ड बुक कंपनी, 1982
3. मानक विशाल हिन्दी शब्द कोश, प्रभात प्रकाशन, 2000